ही उसकी महत्ता लगी है। ऐसा उसका अर्थ है।

मुमुक्षु :- स्वभाव के सामने विभाव की महत्ता नहीं लगी, इसलिये वर्णन नहीं किया है।

समाधान :- इसलिये उसका वर्णन नहीं आता।

मुमुक्षु :- है तो अनादि का।

समाधान :- है तो अनादि का। लेकिन आचार्यदेव कहते हैं कि तु खुद को पहचान तो वह छूट जायेगा। तू स्वयं को पहचान। तेरा परिभ्रमण हो रहा है। तेरे कारण, तेरी भूलसे होता है इसलिये तू बदल दे। भूल होने का कारण क्या? आचार्यदेव उसका विस्तार नहीं करते हैं। तू ही कारण है। तेरी भूल के कारण तू भटका है।

मुमुक्षु :- उसके विरोध में ऐसा भी कहते हैं कि तेरे में ऐसी कोई शक्ति ही नहीं है कि जिस कारणसे तुझे विभावरूप परिणमन करना पड़े। तेरे में ऐसा गुण ही नहीं है कि तुझे विभावरूप परिणमना पड़े। लेकिन विभावरूप परिणमन तो अनादिसे संसार में चल ही रहा है।

समाधान :- चल तो रहा ही है। उसमें ऐसा कोई गुण नहीं है, लेकिन तेरी योग्यता के कारण ही तू परिणमता है। उसका अर्थ यह है कि योग्यता नहीं हो तो कर्म जबरन परिणमन नहीं करवाता है। यदि कर्म परिणमन करवाता हो तो किसीका मोक्ष ही नहीं होता। जीव पराधीन हो गया। कर्म करे तब होगा, कर्म मार्ग दे और कर्म मोक्ष दे, सब कर्मसे हुआ। फिर अपना कारण तो रहा नहीं। पूरा मोक्ष पराधीन हो गया। ऐसा तो होता नहीं। स्वयं पुरुषार्थ करे। दर्शन, ज्ञान,चारित्र की आराधना तू तेरे पुरुषार्थसे कर। तेरी भूल हो उसकी प्रायश्चित् कर, प्रत्याख्यान कर वह सब व्यवहार व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि कर्म ही सब करता है। फिर तुझे कहाँ पुरुषार्थ करना रहता है। इसलिये तू पुरुषार्थ कर, तू आराधन कर, तू उपदेश सुन, तू अन्दरसे बदल जा, ऐसा सब कहने में आता है उसका अर्थ यह होता है कि तेरी भूलसे तू भटका है। निमित्त कर देता हो तो खुद को कुछ करना ही नहीं रहता।

मुमुक्षु :- आपका कहने का तात्पर्य यह है कि त्रिकाली सामर्थ्य नहीं होनेपर भी पर्याय में योग्यता तो खुद की ही है।

समाधान :- खुद की ही योग्यता है। अपनी योग्यता के बिना होता नहीं, खुद पलटता है, स्वयं करता है। निमित्तमात्र है। निमित्त करता हो तो बिलकूल पराधीन हो गया। अपनी कोई योग्यता ही नहीं हो तो बिलकूल पराधीन (हो गया)। तो फिर आराधना करनी, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, खुद के आधीन कुछ रहता ही नहीं। सबकुछ कर्म करे तब होगा। तो उपदेश दिया जाता है कि तू आराधना कर, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर, चारित्र प्रगट कर, सब कहने में आता है। पूरा उपदेश निष्फल है, यदि खुद नहीं कर सकता हो तो।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–६ B

मुमुक्षु :– हे माताजी! वचनामृत में आता है कि ज्ञानी को दृष्टि के साथ ज्ञान सब विवेक करता है। तो ज्ञान कैसे विवेक करता है, यह आप कृपा करके समझाईये।

समाधान :– दृष्टि का स्वरूप तो गुरुदेवने बहुत समझाया है। सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, गुरुदेवने सब स्पष्ट करके समझाया है। दृष्टि यानी जिसने आत्मा का आश्रय ग्रहण किया है। उसमें जो अधूरे भाव, विभावभाव आदि सबको गौण करके, एक आत्मा को जो ग्रहण करता है, परमपारिणामिकभावस्वरूप आत्मा अनादिअनन्त है उसे जो ग्रहण करता है, वह दृष्टि बस, आत्मा पर ही रहती है। दृष्टि तो सब पर्यायों को, गौण करती है। लेकिन साथ में रहा जो ज्ञान है वह ज्ञान सबका विवेक करता है कि पर्याय में विभाव है, यह अधूरी पर्याय है, यह पूरी पर्याय है, यह साधकदशा है, यह सब विवेक ज्ञान करता है और दृष्टि ग्रहण करती है। लेकिन दृष्टि के साथ ज्ञान होता ही है। यदि दृष्टि के साथ ज्ञान नहीं हो तो वह दृष्टि यथार्थ नहीं है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ ही होते हैं। सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान दोनों साथ ही रहे हैं, साधकदशा में। पर्याय अधूरी है, यह साधकदशा है, सम्यग्दर्शन के बाद आगे जाना है, अन्दर लीनता करनी है, अभी चतुर्थ, पंचम भूमिका का सब विवेक ज्ञान में होता है। और दृष्टि एक चैतन्य पर ही, एक मूल वस्तु पर ही स्थापित रहती है। अन्दर स्वानुभूति में भी दृष्टि एक आत्मा पर ही रहती है। इसप्रकार दृष्टि और ज्ञान साथ ही रहे हैं।

ज्ञान मुख्य, दर्शन-ज्ञान मुख्य हो जिसमें वही मुक्ति का मार्ग है। दर्शन-ज्ञान मुख्य हो उसके साथ चारित्र भी आता है। बाहर इतनी क्रिया कर ली या ये सब कर लिया, तो मुक्ति का मार्ग तो ऐसा नहीं है। जहाँ दर्शन और ज्ञान की मुख्यता होती है वहीं मुक्ति का मार्ग प्रारंभ होता है। मुक्ति का मार्ग बाहरसे प्रारंभ नहीं होता कि थोड़ी क्रिया कर ली या थोड़ा त्याग कर लिया, ऐसा मुक्ति का मार्ग शुरू नहीं होता। मुक्ति का मार्ग अन्दर दर्शन और ज्ञानसे ही शुरू होता है। वही मुक्ति का मार्ग है। सम्यग्दर्शन होता है तबसे। दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है। दोनों साथ ही रहे हैं।

ऐसा मुक्ति का मार्ग गृहस्थाश्रम में भी होता है। भरत चक्रवर्ती गृहस्थाश्रम में थे तो भी अन्दर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान था, आंशिक लीनता भी साथ में थी। लेकिन वह चारित्रदशा नहीं थी, स्वरूप रमणता उनको साथ थी। ज्ञायक की धारा साथ ही साथ रहती थी। ज्ञाताधारा उसे साथ ही रहती थी। भेदज्ञान की धारा चालू ही रहती थी। चाहे जो भी विभावपर्याय हो, प्रत्येक शुभाशुभ भावों में ज्ञायकधारा भिन्न ही रहती थी। भेदज्ञान की धारा और दृष्टि

द्रव्य पर रहती थी। वही मुक्ति का मार्ग है। दर्शन, ज्ञान पवित्र आश्रम है। दर्शन, ज्ञान की जिसमें मुख्यता है, वही पवित्र आश्रम है और उसहीसे साम्य की, मुक्ति की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन ही मुख्य है। वही मुक्ति का मार्ग है। गुरुदेवने सब स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु :- हे पूज्य भगवती माता! धन्यावतार! हम बालकों को तारनेवाली मुमुक्षुओं का हृदय भीगा हुआ रहना चाहिये, इसके लिये थोड़ा-सा स्पष्टीकरण कीजिये।

समाधान :- क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- मुमुक्षु का हृदय भीगा हुआ रहना चाहिये, उस पर..

समाधान :- मुमुक्षु का हृदय तो भीगा हुआ ही रहना चाहिये। क्योंकि आत्मा है, यह विभाव अपना स्वभाव नहीं है और आत्मा में ही सब भरा है। उसकी ही महिमा लगनी चाहिये। इस विभावसे उसे विरक्ति-वैराग्य अन्दरसे आना चाहिये। आत्मा का कल्याण कैसे हो? यह भवभ्रमण कैसे कटे? अन्दर सुख की प्राप्ति कैसे हो? इसप्रकार का उसे अन्दर वैराग्य, महिमा सब रहना चाहिये और तत्त्व का निर्णय भी साथ में होना चाहिये। भीगा हुआ हृदय होना चाहिये। मुमुक्षु का कार्य जो मुमुक्षु को शोभा दे ऐसा ही उसका कार्य होता है। मुमुक्षुता के बाहर का उसका कार्य नहीं होता। अन्दर उसका हृदय भीगा हुआ होना चाहिये। उसे खटक रहनी चाहिये कि आत्मा का स्वरूप कैसे समझ में आये? अन्दर ऐसी खटक रहनी चाहिये। कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष। मोक्ष की अभिलाषा होनी चाहिये। उसे तीव्र उस प्रकार के कषाय, उस प्रकार का रस, अनन्तानुबंधी का रस ऐसा तीव्र नहीं होता, अंतरसे आत्मा की ओर का रस और उग्रता होनी चाहिये। आत्मा की ही लगनी, आत्मा की ही महिमा, यह अंतरसे ही होना चाहिये।

मुमुक्षु :- कृपालुदेव में आता है, वचनामृत वीतरागना परमशांतरस मूल, औषध जे भवरोगना कायरने प्रतिकूल। वचनामृत वीतरागना परमशांतरस मूल, कायरने प्रतिकूल। कायर को क्या कायरता रह जाती है कि प्रतिकूल पड़ते हैं?

समाधान :- वचनामृत वीतरागना, परमशांतरस मूल। शांतरस जिसमें भरा है। वीतराग के वचन ऐसे हैं कि शांतरससे भरपूर है और अंतर में शांतरस प्रगट हो ऐसे हैं। औषध जे भवरोगना। वह औषध है। भवरोग की कोई औषधि हो तो वह वीतराग की वाणी है, गुरुदेव की वाणी है वह औषधिरूप है। लेकिन कायर को प्रतिकूल है। जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है, जिसमें कायरता भरी है, जिसे आत्मा की लगनी लगी नहीं है उसे सब प्रतिकूल लगता है। क्योंकि अंतर आत्मा में तू लीन हो जा, आत्मा में ही सबकुछ है, बाहर का छोड़ना कठिन पड़ता है, बाह्य रस जिसे है, संसार का रस लगा है, विभाव का रस लगा है ऐसे कायर को वह प्रतिकूल लगता है। अंतरसे तू सबसे छूट जा। सब विकल्पसे, सबसे छूट जा। अंतर शांतरस भरा है, ऐसी बात, जो कायर है, जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है ऐसे जीवों को वह प्रतिकूल पड़ता है। उसे तो बाहर का सब अच्छा लगता है। जिसे पुरुषार्थ नहीं

करना है उसे सब बाहर का ही अच्छा लगता है। अंतर की रुचि नहीं लगती। भगवान के वचन कायर को प्रतिकूल है।

मुमुक्षु :- मुनि मुनित्व की मर्यादा का उल्लंघनकर विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा तोड़कर विशेष बाहर जाये तो अपनी मुनिदशा ही नहीं रहे। तो मुनिराज को कैसी मर्यादा होती है?

समाधान :- मुनि अपनी मर्यादा छोड़कर बाहर नहीं जाते। उनकी जो दशा है, आत्मा में छट्ठे-सातवें गुणस्थान में प्रतिक्षण अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में झुलते हैं। क्षण में बाहर आये, क्षण में अंतर में जाते हैं। बाहर आये तो श्रुतज्ञान के विचार होते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की ओर के विचार होते हैं। शुभ विकल्प होते हैं। लेकिन उसमें अधिक समय नहीं रुकते, तुरंत अंतर में जाते हैं। प्रतिक्षण छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झुलते हैं। ऐसी दशामेंसे बाहर शुभभावों में अधिक समय नहीं रुकते। उनको शुभभाव का भी इतना रस नहीं चढता कि मुनि की मर्यादा जो सातवें गुणस्थान में जाने की है, वहाँ सहज चले जाते हैं। शास्त्र लिखते हैं तो शास्त्र में इतना रस चढ गया कि उसमें इतना एकत्व हो गया कि सातवाँ गुणस्थान नहीं आये। तो उनकी मुनिदशा पलट जाये। शास्त्र लिखते हों, भगवान के स्तोत्र रचते हो, भगवान के स्तोत्र बोलते हों, उपदेश देते हो उन सब में ऐसा रस नहीं चढता। अन्दर ज्ञायकधारा तो होती है, लेकिन अंतर लीनता करना छूट जाये ऐसा नहीं बनता। (यदि ऐसा हो तो) मुनित्व की मर्यादा छूट गयी।

विकल्प में भी मुनि के जो पंच महाव्रत के कार्य हैं उसकी मर्यादा में खड़े हैं। उससे अधिक जो गृहस्थ के कार्य हैं ऐसे कार्य में वे जुड़ते नहीं। गृहस्थों के साथ विशेष बातचीत करनी, गृहस्थों के कार्य में जुड़ना, कोई व्यवस्था में जुड़ना, ऐसे कार्य मुनि को नहीं होते। तो उनकी मुनिदशा पलट जाती है। ऐसा उनको बाहर में नहीं होता, अंतर में भी शुभभाव में विशेष नहीं रुकते। वे तो अंतर में हैं। ऐसा उनको रस लग गया कि अंतर अप्रमत्त दशा नहीं आये ऐसा नहीं बनता। मर्यादा छोड़कर बाहर नहीं जाते। उन्हें तो-मुनिओं को तो आत्मा में ही सुहाता है।

एास्त्र में आता है न? सब छूट गया, आप सबका निषेध करते हो तो मुनिदशा मुनिपना कैसे पालेंगे? मुनि किसके आश्रयसे मुनिपना पालेंगे? मुनि अशरण नहीं है। उनको आत्मा की शरण है। आत्मा के अमृत में ऐसे लीन हैं कि उन्हें तो आत्मा का ही शरण है। बाहर शुभभाव आये तो सबका निषेध भी आता है। सबका निषेध करोगे तो मुनिपना किसके आधारसे पालेंगे? मुनिपना अपने स्वरूप के आधारसे बारंबार अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में स्वरूप में जाते हैं। उसके आधारसे वे मुनिपना पालते हैं। यदि उससे अधिक समय शुभभाव भावों में रुक जाये तो उनको अप्रमत्त दशा यदि नहीं आये तो मुनि की दशा का उल्लंघन होता है। और बाहर के कार्य में कोई गृहस्थ जैसे कार्य में रुक जाये तो पंच महाव्रतसे बाहर जाते हैं। मर्यादा छूटती नहीं। मुनिदशा में उसके योग्य शुभभाव होते हैं। गृहस्थों को गृहस्थ के योग्य

अणुव्रत आदि होते हैं। सम्यग्दर्शन में सम्यग्दर्शन के योग्य होते है और मुनि को मुनि के योग्य होते हैं। ऐसी मुनिदशा की मर्यादा होती है। छठ्ठे–सातवें गुणस्थान में झुलते मुनि उसमें ही आगे बढ़ते हैं और किसीको उस भव में केवलज्ञान होता है, किसीको दूसरे भव में केवलज्ञान होता है। ऐसी मुनि की दशा है।

मुमुक्षु :– सातवें को बाधा पहुँचे ऐसे शुभभाव में भी नहीं आते और छठ्ठेसे नीचे जाये ऐसे अशुभ परिणाम भी नहीं होते।

समाधान :– ऐसे अशुभ भी नहीं आते। छठ्ठेसे नीचे जाये ऐसे नहीं आते और सातवे को विघ्न हो ऐसे शुभभाव नहीं होते।

मुमुक्षु :– इसका नाम मुनिपना की मर्यादा है।

समाधान :– हाँ, यह मुनिपना की मर्यादा है।

मुमुक्षु :– मुनिराज सम्यग्दृष्टि को वंदन करते हैं, नियमसार गाथा–७२ में है। इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

समाधान :– मुनिराज सम्यग्दृष्टि को वंदन करते हैं यानी उनका आदर करते हैं। मुक्ति का मार्ग पूरा आदर करने योग्य है। सम्यग्दर्शनसे लेकर अंतिम कक्षा का जो मुक्ति का मार्ग है, मुक्ति की दशा है वह सब आदर करने योग्य है। मुनि व्यवहार नहीं करते। बाहरसे सम्यग्दृष्टि को देखकर सीधे वंदन करे ऐसा नहीं होता। उनका अंतर में आदर करते हैं। जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ऐसा सम्यग्दर्शन जिसने प्राप्त किया ऐसा आत्मा वंदन करने योग्य है, उसको वंदन करता हूँ। उनका आदर करते हैं। उनको सीधा वंदन करते हैं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। मुक्ति का मार्ग हमें आदरणीय है। जिसे मुक्ति का मार्ग प्रगट हुआ, ऐसी मुक्ति प्रगट हुई वह आदर करने योग्य है।

मुमुक्षु :– अनुमोदन किया।

समाधान :– अनुमोदन करते हैं। अनादि कालसे जो सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है, मुक्ति का मार्ग प्रारंभ नहीं हुआ है और मुक्ति का मार्ग शुरू होता है, जिसमें सम्यग्दर्शन मुख्य है, फिर उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब होता है। विशेष आराधना होती है। फिर तीनों रत्न एकत्रित हों तब पूरी दशा केवलज्ञान तक पहुँचते हैं। सम्यग्दर्शनसे लेकर जबसे मुक्ति का मार्ग प्रगट हुआ और मुक्ति का अंश प्रगट हुआ वह सब आदर करने योग्य है।

मुमुक्षु :– सन्मार्ग जयवंत वर्तो, उसमें वह आ गया। मार्ग में आ गये हैं।

समाधान :– उसमें आ गया। सन्मार्ग जयवंत वर्तो।

मुमुक्षु :– प्रति क्षण आत्मा को ऊर्ध्व रखना, कृपा करके (समझाईये)।

समाधान :– दूसरा क्या है?

मुमुक्षु :– ज्ञानी का उपयोग बाहर हो, फिर भी दृष्टि मूल में टिकी है, तो एकसाथ दोनों कैसे हो सकते हैं?